पूछो कि पूछने से बनती है दुनिया

निरंजन सहाय

मूल्यांकन ने अंकन में ज्यादा से ज्यादा निष्पक्षता के प्रति अपने पागलपन के कारण तथा बच्चों के कोमल दिमाग को अनगिनत जानकारी के बेकार टुकड़ों (स्वेज नहर किसने बनाई? 19 नवंबर को सूर्य कहां होगा? हेयर कौन है और उसके उपकरणों के बारे में तुम क्या जानते हो?) से भरने की अंतहीन इच्छा के चलते शिक्षा को ऐसे भीमकाय तथा अत्यंत उत्साही कार्यक्रम में सीमित कर दिया है, जहां जीतने वाले को स्वर्ग का स्वतंत्र टिकट आई. ए. एस. के रूप में तथा द्वितीय स्थान पर आने वाले को शुद्धिकरण का टिकट, आईआईटी तथा उच्च प्रबंधक पदों के रूप में, प्रश्नोत्तरी में कोई स्थान प्राप्त न कर पाने वाले अन्यों को केवल चल सकने की स्वतंत्रता वो भी न तो स्वर्ग में और न ही शुद्धिकरण स्थल में मिलती है (पृ. 38 पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकें, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, एनसीईआरटी, 2008)।

शिक्षायी दुनिया में सवालों के सिलसिले में प्रायः एक लापरवाही भरी तटस्थता अपनाई जाती है या उस व्यवहारवाद का मोह प्रश्नकर्ता पर हावी रहता है जिसमें ज्ञान को जिन्दगी से अलग कर कोरे मतारोपण का जरिया माना जाता है। सवालों से जुड़े अनेक मुद्दे हैं, मसलन - क्या सवालों की प्रचलित प्रवृत्ति प्रायः इस कदर खतरनाक है कि उसमें लोकतंत्र का दायरा लगातार सिकुड़ रहा है और तानाशाही के लिए ऊर्वर जमीन तैयार हो रही है? क्या हमारी मौजूदा शिक्षायी व्यवस्था में सवालों की मौजूदगी इस रूप में है कि वे सोचने, विश्लेषण करने और निर्णय करने के विभिन्न संदर्भों में रेखांकित किए जा सकें? क्या हिन्दी शिक्षण महज व्याकरण की तकनीक को हासिल करना है? सवालों का भाषायी कौशलों के अर्जन, शिक्षणशास्त्र तथा ज्ञानमीमांसा से क्या संबंध हैं, आदि। बीरेंद्र सिंह रावत की किताब 'सवालों की शिक्षा' ऐसे अनेक सवालों से हमारा आत्मीय साक्षात्कार कराती है। प्रश्नों के विश्लेषण के अकाल भरे इस दौर में यह पुस्तक अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। लेखक का मानना है कि प्रायः हिंदी की पाठ्यपुस्तकें सोचने और अभिव्यक्त करने की क्षमताओं को कुंठित करती हैं। क्योंकि इनमें 87.2 प्रतिशत प्रश्न सोचने और अभिव्यक्त करने की दिशा में ले जाने की बजाय स्मृति पर टिके हैं। यदि शिक्षा का मकसद दी गई सूचनाओं को याद करना भर है तो इसे शिक्षा न कहकर मतारोपण कहना तार्किक होगा। लेखक का यह भी मानना है कि सवाल के जरिए पाठ्यक्रम को अधिक लोकतांत्रिक बनाया जा सकता है। क्योंकि इनके माध्यम से अलग-अलग अनुभवों को सुना जा सकता है तथा न्याय और लोकतंत्र की कसौटियों के आधार पर उचित और अनुचित अनुभवों में अंतर करते हुए शिक्षित होने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया जा सकता है।

गणित को छोड़कर कोई भी ज्ञान अपनी प्रमाणिकता के लिए बाहरी दुनिया से निरपेक्ष नहीं हो सकता। और यदि बात भाषा के शिक्षण की हो तो उसे समाज सापेक्ष होना ही होगा। लेकिन देखा यह गया है कि भाषा के पाठ्यक्रम के साथ भी गणित के पाठ्यक्रम जैसा व्यवहार किया जाता है। इस कारण भाषा की कक्षाएं सूचनाओं को याद करने की जगहें बन जाती हैं। भाषा की कक्षाएं व्यवहारवाद के शिकंजे में कैद हैं। इस

सवालों की शिक्षा
प्रकाशकः यश पब्लिकेशंस
1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-110032
मूल्यः 495 रुपये (हार्ड कवर)

शिकंजे से उन्हें मुक्त करवाना भाषा और दुनिया की बेहतर और विविधतापूर्ण समझ के लिए जरूरी है। इस राह में सवाल बेहतर साथी साबित हो सकते हैं। सवाल व्यवहारवाद के बंद घेरे को तोड़कर उसमें कैद विषयवस्तु और सीखने वाले और सीखने वाली के जेहन को मुक्त कर सकते हैं।

पुस्तक उत्तर भारत के विभिन्न राज्यों की आठ सरकारी संस्थाओं द्वारा तैयार की गई पहली से आठवीं तक की हिंदी की पाठ्यपुस्तकों के अध्ययन पर आधारित है। जिसमें चौंसठ पुस्तकों में दिए गए पाठों के अंत में पूछे गए सवालों के आधार पर हिंदी के पाठ्यक्रम के ज्ञान के क्षितिज को समझने का प्रयास किया गया है। पुस्तक में कुल छह अध्याय हैं। अध्याय एक का शीर्षक है परिचय। इस अध्याय में लेखक ने पुस्तक में शामिल प्रश्नों के विश्लेषण की तीन संकल्पनाओं का जिक्र किया है साक्षरता, मतारोपण (इनडॉक्ट्रीनेशन) तथा शिक्षा। लेखक ने कृष्ण कुमार की साक्ष्य पर बताया है कि, ऐसी साक्षरता जो शब्दों के अलावा परिस्थिति का बोध कराती है, शिक्षा बन जाती है। इसके विपरीत जब शिक्षा जीवन और समाज की परिस्थिति से कट जाती है तब वह साक्षरता बनकर रह जाती है। इसके बाद लेखक ने शैक्षिक मतारोपण के विभिन्न संदर्भों की चर्चा की है। उनका मानना है शिक्षा को ऐसी संकल्पना के रूप में देखना चाहिए जो प्रशिक्षण तथा परिचय पर विराम न लेकर संस्कृति के तमाम पहलुओं को विचार प्रणालियों का हिस्सा मानने की चेतना विकसित करती हो। साथ ही उसी के परिप्रेक्ष्य में हिन्दी के शिक्षणशास्त्र तथा उसमें प्रश्नों की भूमिका को भी समझना चाहिए। दूसरे अध्याय 'तरीका' में लेखक ने किताब के विश्लेषण में शामिल दूसरी से पांचवीं तक की हिन्दी पाठ्यपुस्तकों के प्रश्नों की पांच कोटियों का निर्धारण किया गया है - तकनीकी प्रश्न अर्थात् वे प्रश्न जिनका उत्तर पाठ में दर्ज होता है तथा जिनके उत्तरों में अर्थगत भिन्नता की गुंजाइश नहीं होती। अनुभवपरक प्रश्न अर्थात् वे प्रश्न जिनका उत्तर देने के लिए उत्तरदाता/उत्तरदात्री को व्यक्तिगत अनुभवों के कोष में से संगत अनुभवों को याद करना तथा प्रश्नानुसार उनका संगत जवाब देना होता है। चिंतनपरक वे प्रश्न हैं जो उत्तरदाता/उत्तरदात्री को किसी संदेह, चिंता तथा झिझक में डालते हैं तथा संदेहों को दूर करने के लिए खोज की दिशा में प्रवृत्त करते हैं। व्याकरणिक प्रश्न। आलोचनात्मक प्रश्न अर्थात् वे प्रश्न जो उत्तरदाता/उत्तरदात्री को सामाजिक अधिसंरचनाओं का परिचय पाने एवं उन्हें समझने की दिशा में प्रेरित करते हैं। संक्षेप में ये प्रश्नों की वे कोटियां हैं, जिनके आधार पर लेखक ने अपनी स्थापनाओं को एक विशिष्ट परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास किया है।

तीसरे अध्याय 'हिन्दी भाषा का शिक्षणशास्त्र' इतिहास और वर्तमान उपशीर्षकों में विभाजित है। लेखक ने बींसवी शताब्दी के दौरान विकसित होने वाली उस हिन्दी अस्मिता को रेखांकित किया है, जिसके कारण हिंदी एक विशेष समुदाय और संस्कृत की और झुकती गई। हिन्दी का संस्कृत की ओर स्वभाविक रूप से जाना और प्रयत्नपूर्वक किसी परंपरा से अनिवार्य रूप से संबद्ध कर देना दोनों अलग-अलग बातें हैं। लेखक के विश्लेषण के सार को इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है, संस्कृत शब्दों के विपुल भण्डार की मदद से हिन्दी को विकसित करें यह एक बात है लेकिन इसके बहाने संस्कृत साहित्य में उपलब्ध एक विशेष तरह के विचारों का प्रसार किया जाए यह दूसरी बात। लेखक ने आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा बनारस में 1932 में निर्मित उस हिन्दी रीडर का भी जिक्र किया है जिसके चलते हिन्दुस्तानी यानी उर्दू मिली हिन्दी का स्थान संस्कृतनिष्ठ हिन्दी ने ले लिया। वर्तमान उपशीर्षक में लेखक की यह स्थापना है कि 'हिन्दी शिक्षण को इस मुकाम पर लाकर खड़ा करने में बीसवीं शताब्दी की उन घटनाओं की पड़ताल आवश्यक है जिन्होंने एक ओर तो हिन्दी को तकनीकी विषय बनाने की दिशा में प्रोत्साहित किया वहीं दूसरी ओर इसे संप्रदाय विशेष की पहचान से जोड़कर इसके शिक्षण की प्रक्रिया को बोझिल बनाने की दिशा में ले गई' व्यवहारवादी शिक्षण प्रणाली ने इसका उपयोग अपने इस विचार को स्थापित करने में इस्तेमाल किया कि हिन्दी भाषा किसी बने बनाए माल की तरह 'व्याकरण', 'राष्ट्रीय एकता', 'विशेष अस्मिता' के पैकेजों में विद्यार्थियों को दी जाएगी। अध्याय

चार 'रखने और छोड़ने की समझ के आधार' सवालों के निर्माण में तीन संकल्पनाओं की भूमिका को विश्लेषित करता है- भाषा, शिक्षणशास्त्र और ज्ञानमीमांसा। लेखक ने भाषा के संचित इतिहास को अवबोधन की क्षमता के विकास के लिए एक महत्वपूर्ण पहलू माना है। शिक्षणशास्त्र की संकल्पना का विश्लेषण करते हुए लेखक ने कृष्ण कुमार की इस राय से अपनी सहमति व्यक्त की है कि, 'ज्ञान का अर्थ जब सामूहिक प्रक्रिया का परिणाम न होकर सत्ता के गलियारों से निकलता है तो सत्ताशाली स्वयं को उस स्थिति में पाते हैं जहां बैठकर वे सत्ता की परिधि से बाहर पड़े लोगों के लिए ज्ञान का अर्थ तय कर सकें।' उसी तरह ज्ञानमीमांसीय समझ तथ्यों और मूल्यगत निर्णयों के मध्य अंतर संबंधों को व्यापक बनाने में सहायक होती है।

अंतिम दो अध्याय बेहद महत्वपूर्ण हैं। अध्याय पांच का शीर्षक है, 'क्या कहते हैं सवाल'। कहानी, कविता और पत्र विधाओं पर आधारित पांच श्रेणी के प्रश्नों (तकनीकी, अनुभवपरक, चिंतनपरक, व्याकरणिक और आलोचनात्मक) का इस अध्याय में विश्लेषण किया गया है। लेखक ने अनेक सारणियों का श्रमसाध्य संकलन और विश्लेषण किया है और उसके बाद तीन सवाल उठाए हैं-

1. वे कौनसे कारक हो सकते हैं जिनकी वजह से हरियाणा की पाठ्यपुस्तकों में औसत तकनीकी प्रश्न सबसे अधिक (7.3%) तथा अनुभवपरक एवं चिंतनपरक प्रश्नों का साझा औसत सबसे (0.75%) कम है?
2. वे कौनसे कारक हो सकते हैं जिनकी वजह से एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा वर्ष 2006 में प्रकाशित पाठ्यपुस्तकों में औसत तकनीकी प्रश्न सबसे कम (4%) तथा अनुभवपरक एवं चिंतनपरक प्रश्नों का साझा औसत सबसे अधिक (7.3%) है?
3. वे कौनसे कारक हो सकते हैं जिनकी वजह से एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा वर्ष 2002 से 2004 तक प्रकाशित पाठ्यपुस्तकों में औसत तकनीकी प्रशन इसी के द्वारा वर्ष 2006 में प्रकाशित पाठ्यपुस्तकों से अधिक तथा अनुभवपरक एवं चिंतनपरक प्रश्नों के साझा औसत से काफी कम है?

अंतिम अध्याय किताब की केन्द्रीय अवधारणा का सर्वाधिक सटीक साक्ष्य है। लेखक ने सवालों की दुनिया की तमाम विसंगतियों के मद्देनजर एक वैकल्पिक संसार की अवधारणा पेश की है। शीर्षक है, 'सही रास्ता'। इस अध्याय में बहुतायत तकनीकी प्रश्नों की विभिन्न सीमाओं का विश्लेषण किया गया है। लेखक का बल अनुभवपरक प्रश्नों के समृद्ध संसार पर है। बकौल लेखक, 'भाषा के इस गुण को समृद्ध करने की कोशिश भाषा की कक्षा का महत्वपूर्ण हिस्सा होना चाहिए। इस पृष्ठभूमि में भी अनुभवपरक प्रश्नों का महत्व समझना चाहिए।' किताब में अनेक तुलनात्मक उदाहरण तकनीकी बनाम आलोचनात्मक प्रश्नों के शामिल किए गए हैं। शिक्षण महज सूचनाओं का ढेर नहीं है, बल्कि उसका सही उद्देश्य है विषयवस्तु को विचार में तब्दील करना। इस किताब की मंशा को समझते हुए जब मैंने किताब का पाठ किया तब किताब की प्रासंगिकता बेहद सजग रूप में मेरे सामने आई, उम्मीद है पाठकों को यह किताब सवालों के सिलसिले में पुनर्विचार के लिए प्रेरित करेगी। विकट दुनिया में जिंदा रहने की बुनियादी शर्त है - विचार।

बकौल श्रीकांत वर्मा,
वे सिर्फ कुछ प्रश्न छोड़ गए हैं
जैसे कि यह
कोसल अधिक दिन नहीं टिक सकता,
कोसल में विचारों की कमी है।' ◆

लेखक परिचयः शिक्षा, समाज और संस्कृति के अंतर्संबंधों पर पिछले एक दशक से लेखनरत हैं। महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी में एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी पद पर कार्यरत हैं। एनसीईआरटी दिल्ली एवं बिहार और राजस्थान सरकार के लिए विभिन्न शैक्षिक सामग्रियों का संपादन और लेखन किया है।